# हिन्दी एक मत से नहीं, एकमत से बनी थी राजभाषा

**श्रीलाल प्रसाद**
**मुख्य प्रबंधक**
**पंजाब नैशनल बैंक**
**प्रधान कार्यालय, राजभाषा विभाग**
**नई दिल्ली - 110008**
**मो0: 9310249821**

स्वाधीन भारत की संविधान-सभा द्वारा भारत संघ की राजभाषा के रूप में स्वीकार किए जाने से लेकर अबतक आधी सदी से भी अधिक की लंबी यात्रा के बाद हिन्दी कहां पहुंची है, यह जानने के पहले आवश्यक होगा कि हम यह जान लें कि वह चली कहां से थी और विश्व के सबसे बड़े लोकतांत्रिक गणतंत्र की राजभाषा के रूप में उसने कितने और कैसे-कैसे रास्ते तय किए हैं। साथ ही, यह जानना भी जरूरी प्रतीत होता है कि हिन्दी और राजभाषा हिन्दी का इतिवृत्त क्या व कैसा रहा है।

वस्तुत: **भाषा**, संप्रेषण का माध्यम और संपर्क का साधन होने के साथ - साथ संस्कृति व संस्कार के संरक्षण, संवर्धन व संवहन का संसाधन भी है। **मातृभाषा** वैयक्तिक और पारिवारिक पृष्ठभूमि का बोध कराती है, **राष्ट्रभाषा** समाज को स्वदेशी भाव-बोध से समन्वित कराते हुए वैश्विक धरातल पर राष्ट्रीय स्वाभिमान की विशिष्ट पहचान का पुख्ता इंतजाम करती है और **संपर्क भाषा** देश-काल-पात्र के बीच सेतु का निर्माण करती है तो राजभाषा शासन-प्रशासन में जनता-जनार्दन की पहुंच का प्रावधान कराती है। **राजभाषा** यानी राज-काज की भाषा, शासकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग की भाषा, जनता और सरकार की भाषा, रियाया और राजदरबार की भाषा।

# इतिहास और राजभाषा

गणतंत्र और लोकतंत्र का उद्‌गाता भारतवर्ष, प्राचीन सभ्यता, संस्कृति और समृद्ध भाषाओं से सम्पन्न रहा है । इसका पिछले **2500 वर्षों** का जो काल खंड है और जो उपलब्ध प्रामाणिक इतिहास है, उसका अधिकांश गौरवशाली धर्म-दर्शन,ज्ञान-विज्ञान, सभ्यता-संस्कृति के आख्यानों से भरा-पूरा तो रहा है,किन्तु राजनीतिक दृष्टिकोण से विदेशी आक्रमण, परस्पर विरोध और पराभव की गाथा ही रहा है।

वह काल खंड यूनानी, शक, हूण, कुषाण वंशों ( इनमें से युनानियों को छोड कर शेष भारत में ही रह गए) की जय-पराजय का साक्षी तो रहा ही है, तुर्क, मुगल, मंगोल, डच, पुर्तगीज, फ्रेंच और अंत में अंग्रेजों की जय-पराजय का भी गवाह रहा है, यहां तक कि गुलाम वंश के भी शासन का मूक द्रष्टा रहा है। यहां जो भी आक्रांता आया, इस सोने की चिड़िया की आंखें निकालने और पंख नोचने में उसने कोई कोर-कसर नहीं छोड़ी, मुगल अवश्य कुछ अपवादस्वरूप रहे, क्योंकि उन्होंने इस देश को अपना वतन बनाने की भरपूर कोशिश की और रोटी- बेटी का संबंध बनाते हुए इसे एक सुगठित साम्राज्य का स्वरूप देने का भी प्रयास किया।

इस काल खंड का इतिहास, सिकंदर के साथ भारत आने वाले इतिहासकार मेगास्थनीज की इंडिका, गुप्त काल में आने वाले चीनी यात्री फाहियान तथा बौद्ध धर्म के उत्थान के दौर में हर्ष - काल में आए एक अन्य चीनी यात्री ह्वेनसंग के यात्रा वृतांत के अलावा हुमायूंनामा, शाहनामा और आईनेअकबरी , अनेकानेक शिलालेख तथा अन्य पुरातात्विक पौराणिक साक्ष्यों आदि से ज्ञात होता है।

अंग्रेजों ने सुव्यवस्थित शासन-प्रशासन और आधुनिक संचार-तंत्र तो विकसित किया किन्तु लूट के साधन और माध्यम के रूप में। इसके अलावा, अंग्रेजों ने देशी भाषाओं और संस्कृति को आक्रांत करते हुए मानसिक गुलामी का बीजारोपण भी किया। यह कहानी तो आजकल की बात जैसी लगती है।

चूंकि हमारे देश को विश्व का प्राचीनतम गणतंत्र-जनतंत्र होने का गौरव प्राप्त है, अत: यह स्वाभाविक होता कि यहां की राजभाषा यानी कि राजकाज की भाषा , शासन-प्रशासन की भाषा जनगण की भाषा रही होती। किंतु कितना बड़ा सांस्कृति और भाषिक विरोधाभास है यह कि जनतंत्र के जन्मदाता भारत वर्ष में जनभाषा इस पूरे काल खड में कभी भी राजभाषा का दर्जा नहीं पा सकी। तब भी नहीं, जब संस्कृत राजदरबार की भाषा थी, क्योंकि तब संस्कृत नहीं, प्राकृत जनभाषा थी, उस वक्त भी नहीं, जब पाली राजभाषा हुआ करती थी, क्योंकि तब पाली

नहीं, अपभ्रंश जनभाषा थी; मध्यकाल में भी नहीं, जब फारसी राजभाषा थी, क्योंकि तब आमफहम जबान फारसी नहीं, अपभ्रंश और उससे उत्पन्न खड़ीबोली थी; और ब्रिटिश काल में भी नहीं, क्योंकि उस काल की राजभाषा अंग्रेजी भारत की जनभाषा नहीं थी, जनमानस की भाषा तो हिन्दुस्तानी यानी हिन्दी थी।

## राजभाषा : ऐतिहासिक निर्णय - ।

भारत के इतिहास में पहली बार जनभाषा को राजभाषा का दर्जा स्वतंत्र भारत की संविधान-सभा ने 14 सितम्बर, 1949 को दिया। वह जनभाषा हिन्दी है क्योंकि भारत भूमि में सदियों से हिन्दी ही (चाहे जिस रूप में भी रही) एक ऐसी भाषा रही है जो पूरे भारत वर्ष में किसी न किसी रूप में लिखी, पढ़ी या बोली अथवा समझी जाती रही है तथा संपर्क का माध्यम रही है। वह भारतीय राष्ट्रीयता के स्वरूप को साकार करने में एक अहम कारक भी रही है। यानी हिन्दी भारत के जन-गण की भाषा रही है।

स्वतंत्रता संग्राम के दिनों में राष्ट्रभक्त आंदोलनकारियों के बीच हिंदी राष्ट्रीय एकता के सबल सूत्र के रूप में कार्य करती रही जिसे भारतीय जनमानस ने राष्ट्रभाषा के रूप में मान दिया किन्तु स्वतंत्र भारत के संविधान ने हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में नहीं, शासकीय प्रयोजनों के लिए भारत संघ की राजभाषा के रूप में अंगीकार किया । इसके लिए संविधान के **भाग 17 में अनुच्छेद 343 से 351** तक प्रावधान किए गए। **अनुच्छेद 343** में कहा गया है कि भारत संघ की राजभाषा हिन्दी होगी और उसकी लिपि देवनागरी होगी, **अनुच्छेद 351** में कहा गया कि भारत सरकार मुख्यत: संस्कृत से और गौणत: अन्य भारतीय भाषाओं से शब्द-सम्पदा ग्रहण करते हुए हिन्दी का विकास इस रूप में करेगी कि वह भारत की सामासिक संस्कृति के समस्त तत्वों की सम्यक् अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम बन सके। अंकों के मामले में भारतीय अंकों के अन्तर्राष्ट्रीय स्वरूप को अपनाया गया तथा देश की समस्त प्रमुख प्रान्तीय भाषाओं (आज उनकी **संख्या 22** है) को संविधान की 8वीं अनुसूची में शामिल कर राष्ट्रीय (महत्व की) भाषा का दर्जा दिया गया।

इस चर्चा को आगे बढाने के पहले संविधान सभा की कार्यवाहियों और इस संबंध में अपनाई गई प्रक्रियाओं पर यदि हम एक नजर डालें तो यह जान पाएंगे कि हिन्दी अपने अस्तित्व की तलाश में कहां-कहां भटकी है तथा इस देश को दुनिया का सबसे बड़ा लोकतांत्रिक देश होने के अपने स्वरूप को बनाए रखने के लिए कैसे-कैसे समझौते करने पड़े हैं क्योंकि विविधता में एकता

हमारी मूल सांस्कृतिक भीत्ति रही है जिसे हर हाल में अक्षुण रखना अपेक्षित ही नहीं,आवश्यक भी था । साथ ही, राजभाषा हिन्दी से संबंधित बहुत से भ्रामक प्रश्नों के स्पष्ट उत्तर भी हमें मिल जाएंगे।

जब यह पूरी तरह निश्चित हो गया कि भारत को आजादी मिल जाएगी तब **1946 ई**. में भारत की संविधान सभा बुलाई गई, जिसकी पहली बैठक **9 दिसम्बर, 1946** को हुई। चूंकि आजादी के साथ-साथ मुल्क के बंटवारे की चर्चा भी जोरों पर थी और चूंकि अनेक प्रमुख राजनेता देश का बटंवारा नहीं चाहते थे, इसीलिए वे (विशुद्ध) हिन्दी के बदले हिन्दुस्तानी (हिन्दी और उर्दू के मिले-जुले रूप) को भारत की राजभाषा बनाना चाहते थे, किन्तु विशुद्ध हिन्दी के पक्षधरों की संख्या भी कम न थी। तो आखिर **हिन्दी,उर्दू,हिन्दुस्तानी की हकीकत क्या है**। **यह जानने के लिए हिन्दी, उर्दू, हिन्दुस्तानी के जन्म, नामकरण, लालन-पालन, भरण-भोषण और स्वरूप-निरूपण** का विवेचन आवश्यक है ।

## हिन्दी , उर्दू , हिन्दुस्तानी : ऐतिहासिक पक्ष

12वीं सदी के अंतिम दशक में मुहम्मद गोरी के आक्रमण के बाद जब देश में विदेशी शासन-व्यवस्था स्थापित हुई, जिसका केन्द्र दिल्ली और आगरा के आसपास का क्षेत्र रहा, तो तत्कालीन शासकों ने प्रशासनिक कार्यों के लिए अपनी भाषा फारसी ( हालांकि अन्दरखाने की भाषा **तुर्की** रही ) का प्रयोग करना शुरू किया। लेकिन अपनी आम जरूरतों के लिए उन्हें स्थानीय लोगों से संपर्क करने की आवश्यकता थी। फलस्वरूप दिल्ली के आसपास बोली जाने वाली स्थानीय भाषा जो एक प्रकार की **अपभ्रंश** थी और धीरे-धीरे **खड़ी बोली** में परिवर्तित हो रही थी- को उन्होंने सीखा और अपनी भाषा के शब्दों के सहारे उस स्थानीय भाषा का प्रयोग करना शुरू किया। इस प्रकार एक तीसरी भाषा स्वत: स्वरूप ग्रहण करती चली गई, जिसे उन लोगों ने **'हिन्दी'** कह कर पुकारा । उसे ही **हिन्दवी** , **हिन्दुई , हिदुस्तानी** भी कहा गया । **इस भाषा का आधार अपभ्रंश थी और शब्दावली का स्रोत संस्कृत थी**। तत्कालीन शासकों के विस्तारवाद के साथ यह भाषा भी दक्षिण पहुंची, जहां उसे **'दक्खिनी'** कहा गया और सर्वप्रथम **बीजापुर, गोलकुण्डा तथा अहमदनगर** आदि छोटे-छोटे राज्यों ने तत्कालीन **हिन्दी यानी दक्खिनी** को अपने राजकाज की भाषा बनाया और **सरकारी जबान अर्थात् राजभाषा का दर्जा दिया।**

कालान्तर में विदेशी सैनिक छावनियों में उनकी अपनी भाषा **फारसी और स्थानीय भाषा खड़ी बोली** के मेल से एक अन्य भाषा ने आकार ग्रहण करना शुरू किया। फारसी लिपि में लिखी जाने वाली **उस भाषा का आधार थी खड़ी बोली और शब्दावली का स्रोत फारसी और खड़ी बोली**

**दोनों थीं**। उसे **छावनी** की भाषा यानी **जबान-ए-उर्दू अर्थात् उर्दू** कहकर पुकारा गया। इस प्रकार **हिन्दी और उर्दू जुड़वां या कम से कम सहोदर बहनों के समान हैं**।

## अंगरेजों की कूटनीति

हिन्दी, उर्दू, हिन्दुस्तानी के वास्तविक अन्तर्संबंधों की ओर हम आगे बढ़ें, उसके पहले अंग्रेजों की भाषा-कूटनीति के मूल में काम कर रही सोच को उजागर करना आवश्यक लग रहा है।

लॉर्ड मेकॉले ने भारत भ्रमण के पश्चात ब्रिटेन वापस जाकर ब्रिटिश संसद में **02 फरवरी, 1835** को जो भाषण दिया था, उसके एक अंश, जिसे यहां उद्धृत किया जा रहा है, को देखने से उनकी पूरी सोच उजागर हो जाएगी-

**'I have traveled across the length and breadth of India and I have not seen one person who is a thief. Such a weath I have seen in this country, such high moral values, people of such caliber that I do not think we would ever conquer this country, unless we break the very backbone of this nation, which I propose that we replace her old and ancient education system, her culture, for if the Indians think that all that is foreign and English is good and greater than their own, they will lose their self-esteem, their native self- culture and they will become what we want them, a truly dominated nation.''**

**अर्थात**

'पूरे भारतवर्ष के भ्रमण के दौरान मैंने एक आदमी भी ऐसा न देखा जो चोर हो। मैंने उस देश में ऐसी समृद्धि और प्रतिभाएं देखी हैं, ऐसे श्रेष्ठ नैतिक मूल्य और लोग देखे हैं कि मुझे नहीं लगता कि उसके सांस्कृतिक एवं नैतिक मेरूदण्ड को तोड़े बगैर हम उसे पराजित कर सकेंगे। इसीलिए मेरा प्रस्ताव है कि भारत की प्राचीन शिक्षा पद्धति और संस्कृति के स्थान पर अंग्रेजियत भर दी जाए ताकि भारतवासियों के दिलोदिमाग में यह सोच घर कर जाए कि जो कुछ भी विदेशी और अंग्रेजी है, वही बेहतर और श्रेयस्कर है। ऐसा होने से वे अपना स्वाभिमान एवं अपनी संस्कृति भूल जाएंगे और जैसा कि हम चाहते हैं, वे एक पराधीन कौम बन जाएंगे।''

इसी सोच ने **'बांटो और राज करो'** की नीति दी और भारत में इसका पहला शिकार हुई भाषा ।

प्रारंभ में हिन्दी और उर्दू में न तो कोई भेद था और न ही कभी कोई भेद किया गया। परन्तु जैसे-जैसे मुगलिया सल्तनत कमजोर होती गई और अंग्रेज सत्ता पर काबिज होते गए, वैसे-वैसे वे **'फुट डालो और राज करो'** की अपनी शाश्वत कूटनीति के सहारे हिन्दी और उर्दू को क्रमश:

हिन्दू और मुसलमान से जोड़ते गए तथा दोनों भाषाओं के साथ-साथ दोनों समुदायों में भी दरार डालते गए। अपनी कूटनीति के अन्तर्गत अंग्रेजों ने हिन्दी की अपेक्षा उर्दू को अधिक

महत्व देना शुरू किया। **सन् 1835** में लॉर्ड मेकॉले की शिक्षा पद्धति भारत में लागू हुई। तब तक अंग्रेजों ने उर्दू को उत्तर, पश्चिम, अवध, बिहार एवं मध्य प्रांत में अदालत की भाषा के रूप में मान्यता दे दी थी। हिन्दी को तो बिहार में **1880 ई.** में तथा उत्तर, पश्चिम और अवध के प्रांतों में **1900 ई.** में जाकर मान्यता मिली।

## हिन्दी, उर्दू,हिन्दुस्तानी : सांस्कृतिक पक्ष

पश्चिमी विद्वानों के साथ-साथ भारतीय भाषा शास्त्रियों ने भी **'हिन्दी' शब्द को फारसी भाषा का शब्द माना** है। वैसे विद्वानों में डा0 **सुनीति कुमार चटर्जी, उदय नारायण तिवारी, भोलानाथ तिवारी और राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर भी शामिल** हैं। **इरानियों द्वारा 'स' का उच्चारण 'ह' के रूप में किए जाने के चलते 'सिन्धु', 'सिन्ध' एवं सिन्धी का 'हिन्दु' 'हिन्द' और हिन्दी हो जाना बतलाया गया है**। वैसे कुछ विद्वान 'हिन्द' शब्द को वैदिक मानने का भी आग्रह रखते हैं। वेसी स्थिति में भी ऊपर की स्थापनाएं गलत साबित नहीं की जा सकतीं क्योंकि भारतवर्ष का इरानियों से संपर्क अत्यंत प्राचीन काल से रहा है। इरानियों के धर्मग्रंथ **'जेन्दावेस्ता'** और आर्यों के आदि ग्रंथ **ऋग्वेद** की ऋचाओं में अद्भुत साम्य मिलता है। क्योंकि इन दोनों ग्रंथों की विषय वस्तु, देव-दानव की अवधारणा, शब्द ,वाक्य - विन्यास और व्याकरण आदि में समानता दोनों की मूल जातियों का एक ही स्रोत होने की ओर संकेत करती हैं। ऐसा भी माना जाता है कि आर्य मध्य पूर्व से भारत भूमि पर आए थे और यह भी संभावना व्यक्त की जाती है कि भारत आने के पहले ही आर्यों ने ऋग्वेद की कुछ ऋचाओं की रचना कर ली हो। जो भी हो, **'हिन्दी' फारसी भाषा का ही शब्द है, ऐसा मानने में शायद ही किसी को एतराज हो, क्योंकि इसके विपरीत प्रामाणिक रूप से कोई अन्य स्थापना नहीं आई है।**

यह ऐतिहासिक रूप से प्रामाणिक तथ्य है कि अपभ्रंश और डिंगल से होती हुई, खड़ी बोली के साथ आत्मसात होती हमारे सामने जो हिन्दी आई है, उसके निर्माण और उसे समृद्ध करने में सिद्धों, योगियों, साधुओं और भक्तों के साथ-साथ अमीर खुसरो एवं अन्य अनेक भारतीय और अभारतीय विद्वानों, लेखकों, कवियों आदि का योगदान रहा है जिनमें पार्सी और इस्लाम धर्मावलम्बियों का योगदान विशेष रूप से उल्लेखनीय है। लेकिन यह सब कुछ हुआ भारत-भूमि पर ही तथा उसकी निर्माण-प्रकिया भारतीय संस्कृति और संस्कार, रीति-रिवाज एवं यहां की माटी की मांग के अनुरूप ही चली तथा पूरी हुई। इसीलिए, **भले ही 'हिन्दी' शब्द फारसी भाषा**

**का शब्द हो, किन्तु 'हिन्दी' भाषा शत-प्रतिशत भारतीय भाषा है जिसने अनगिन अन्य भारतीय और अभारतीय भाषाओं के शब्दों को आत्मसात किया है**। यानी **हिन्दी अपने जन्म और कर्म**

-

**दोनों ही रूपों में सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक एवं भाषिक समन्वय और सौहार्द का प्रतीक रही है।**

इस प्रकार लगभग 1000 वसन्त देख चुकी हिन्दी, अपने प्रारंभिक काल में हिंदवी, हिंदुई, हिंदुस्थानी के रूप में मुकरियों, कहावतों, सधुकड़ी वाणियों तथा आलवार साधु-संतों, भक्तों, नाथ-पंथियों का संदेशवाहक बन भारत के एक कोने से दूसरे कोने में विचरती रही तो मध्यकाल में ब्रजभाषा व अवधी के रूप में श्रद्धा-प्रेम-भक्ति व श्रृंगार की सहस्र रसधार को श्रेष्ठ काव्य की त्रिवेणी में समाहित करती रही और आधुनिक काल में खड़ी बोली के रूप में भारतीय स्वाधीनता संग्राम के दुर्धर्ष सेनानियों के बीच संपर्क सूत्र का कार्य करती रही।

भाषा पर विचार करने वाले प्राय: सभी विद्वान उर्दू को एक स्वतंत्र भाषा न मानकर हिन्दी का ही एक अन्य रूप मानते हैं। **ग्राहम बेली** ने उर्दू को पुरानी खड़ी बोली से तो **ग्रियर्सन** ने ठेठ हिन्दुस्तानी से उत्पन्न माना है। **बाबू गुलाब राय** उर्दू को खड़ी बोली से उत्पन्न परन्तु विदेशी लिबास में सजी भाषा मानते हैं जबकि मुहम्मद हुसैन आजाद अपनी पुस्तक 'आबेहयात' में उर्दू की उत्पत्ति ब्रज भाषा से स्वीकार करते हैं। फिराक गोरखपुरी अपने ग्रंथ 'उर्दू भाषा और साहित्य' में लिखते हैं कि उर्दू कविता के आविर्भाव से सैकड़ों वर्ष पूर्व से ही भारतवर्ष के करोड़ों लोग उस घुली मिली जबान का प्रयोग करते थे जो थी तो हमारी बोली किन्तु मुसलमानों के आगमन के बाद उसमें अरबी-फारसी के शब्द घुलमिल गए थे, वही घुली मिली जबान कालान्तर में उर्दू के नाम से जानी जाने लगी। **'दिनकर'** ने खड़ी बोली हिन्दी और उर्दू दोनों ही भाषाओं का पिता खुसरो को माना है तो **पं. नेहरू** ने उर्दू को हिन्दी की सहोदर छोटी बहन कहा ।

कुछ विद्वानों का मत है कि मुसलमान जब भारतभूमि पर आए तो उनके साथ उनकी अरबी और फारसी भाषा भी आई। उनके सैनिक नगरों से दूर छावनियों में रहते थे। छावनियों के आसपास हाट बाजार लगते थे। सैनिक वहां खरीद-फरोख्त करते थे। माल बेचने वाले स्थानीय लोग अपनी खड़ी बोली में बात करते जबकि सैनिक अपनी अरबी, फारसी में बोलते। खरीद-बिक्री के दौरान परस्पर भाषाओं और शब्दों का लेन-देन भी स्वत: होता रहा। आपसी समझ बढ़ती रही, इस प्राकर दोनों समूहों की जबान से एक तीसरी भाषा अपने आप आकार ग्रहण करती गई जो **'जबान-ए-उर्दू'** यानी **'छावनी की जबान'** कहलाई। वही **'जबान-ए-उर्दू' संक्षिप्त रूप में उर्दू बन गई**। उसी मिली-जुली भाषा को **'रेख्त:'** या **'रेख्ती'** भी कहा गया। ये सारी क्रियाएं-प्रकियाएं भारत भूमि पर ही हुई और उसमें स्थानीय खड़ी बोली का प्राधान्य रहा। अत: उर्दू शत-प्रतिशत भारतीय भाषा

ही है। किसी भी भारतीय या अभारतीय भाषा शास्त्री ने उर्दू को भ्रम से भी अभारतीय भाषा नहीं माना है। इससे साफ जाहिर होता है कि खड़ी बोली हिन्दी में अरबी और फारसी के शब्दों का

समावेश कर उसे फारसी (कुछ लोग 'नस्तालीक' लिपि भी कहते हैं जो अरबी मूल का शब्द है) में लिखकर उर्दू नाम दे दिया गया ।

कालान्तर में हिन्दी और उर्दू में बिलगाव दोनों ही भाषाओं के शुद्धतावादी कठमुल्लाओं के चलते शुरू हुआ। हिन्दी के शुद्धतावादी पक्षधर खोज-खोज कर हिन्दी में घुलमिल गए अरबी-फारसी शब्दों का निष्कासन तथा तत्सम संस्कृत शब्दों का समावेश करते गए। वैसे ही उर्दू के शुद्धतावादी पक्षधर उर्दू की प्रकृति के विरूद्ध अपरिचित एवं अप्रचलित अरबी, फारसी शब्दों को जबरन ठूसते गए, किन्तु लाख चाहर कर भी हिन्दी और उसकी बोलियों के शब्दों को निकाल बाहर नहीं कर पाए और उर्दू का वाक्य विन्यास तथा व्याकरण हिन्दी के अनुसार ही रहा, वह तब भी वैसा ही था और अब भी वैसा ही है। आज भी हिन्दी से घुसपैठिए तत्सम संस्कृत शब्दों को तथा उर्दू से जबरन ठूसे गए अप्रचलित-अपरिचित अरबी-फारसी शब्दों को निकाल दिया जाए और उसे देवनागरी लिपि में लिख दिया जाए तो कोई भी व्यक्ति हिन्दी और उर्दू में रत्ती भर अंतर नहीं बता पाएगा।

## हिन्दी , उर्दू , हिन्दुस्तानी : राजनीतिक पक्ष

किंतु जिस तरह आजादी के पहले भारत के सभी प्रांतों, क्षेत्रों, भाषाओं के विद्वानों, साहित्यकारों, राजनीतिज्ञों ने हिन्दी को भारत की राष्ट्रभाषा और राजभाषा बनाने की वकालत की थी किन्तु आजादी मिलने के बाद कुछ निहित स्वार्थो के वशीभूत होकर राजनैतिक कारणों से उनमें से कई बड़े कहे जाने वाले लोगों ने पाला बदल लिया और हिन्दी का विरोध करना शुरू कर दिया, वैसे ही, कुछ तो अंग्रेजों की **'फुट डालो और राज करो'** की नीति के चलते और कुछ अन्य कारणों से भी, पाकिस्तान बन जाने के बाद हिन्दी और उर्दू दोनों ही भाषाओं के कुछ कुंठित पक्षकारों ने निहित स्वार्थ और साजिश के तहत धर्म के नाम पर (जिसके मूल में सिर्फ राजनीति थी) दोनों भाषाओं के बीच दूरियां बनाने और दुर्भावनाएं पैदा करने का काम किया। हालांकि कुछ ऐसे भी साहित्यकार हुए जिन्होंने भाषाई सौहार्द की दिशा में अथक प्रयास किए। वैसे अनेक लोगों में **नजीर बनारसी** तथा रघुपति सहाय **फिराक गोरखपुरी** का उल्लेख विशेष रूप से किया जा सकता है। नजीर की **'गंगोजमन'** और फिराक की **'गुल-ए-नगमा'** पुस्तक इसका प्रमाण है। उसी कड़ी को आगे बढ़ाते हुए बेकल उत्साही ने अपनी एक नज्म में हिन्दी और उर्दू को **'मेरी एक आंख गंगा, मेरी एक आंख यमुना'** कहकर गंगा-जमुनी संस्कृति का प्रतीक बताया है। वैसे ही उर्दू की

अनेक काव्य पुस्तकें देवनागरी लिपि में प्रकाशित हुई हैं जिनमें पांच प्रतिशत शब्द भी ऐसे नहीं होंगे जिनका अर्थ समझने के लिए फुटनोट देखने की जरूरत महसूस हो।

-

चूंकि हिन्दी को संविधान सभा ने 14 सितम्बर, 1949 को राजभाषा के रूप में अंगीकार किया, इसीलिए भारतवर्ष में प्रत्येक वर्ष 14 सितम्बर को हिन्दी दिवस के रूप में मनाया जाता है। ( पहला विश्व हिन्दी सम्मेलन 10 जनवरी, 1975 को (नागपुर में) आयोजित हुआ था, इसीलिए अब प्रतिवर्ष **10 जनवरी** को विश्व हिन्दी दिवस मनाने की परम्परा भी चल पड़ी है। )

संवैधानिक प्रावधानों के अनुसार संविधान लागू होने के दिन से 15 वर्षों तक हिन्दी के साथ-साथ अंग्रेजी को भी भारत संघ की सह-राजभाषा के रूप में जारी रखा जाना था और उसके बाद हिन्दी को ही पूरी तरह से राजभाषा के रूप में लागू कर दिया जाना था।

**26 जनवरी, 1950** को भारत का संविधान लागू हुआ, तदनुसार **26 जनवरी, 1965** से हिन्दी को पूरी तरह से राजभाषा के रूप में लागू हो जाना था। उसी को ध्यान में रखकर भारत की संसद ने 1963 में राजभाषा अधिनियम पारित किया, हालांकि परिस्थितिजन्य कारकों के चलते 1967 में उसमें कतिपय संशोधन करने पड़े। उसी अधिनियम के प्रावधानों के तहत राजभाषा नियम (1976) बने तथा संसदीय राजभाषा समिति आदि का गठन हुआ।

आज कुछ अति उत्साही और स्वघोषित हिन्दी प्रेमी लोग प्राय: यह सवाल उठाते हैं कि हिन्दुस्तान में हिन्दी दिवस क्यों?

वस्तुत: 14 सितमबर, 1949 का दिन वह ऐतिहासिक दिन था जब स्वतंत्र भारत, जिसने गणतंत्रात्मक जनतंत्र को अपनाया था, ने जन-गण की भाषा हिन्दी को राजभाषा के रूप में स्वीकार किया।

तो क्या **14 सितम्बर का दिन 15 अगस्त और 26 जनवरी** की भांति ऐतिहासिक महत्व का दिन नहीं है?

क्या हिन्दी दिवस के आयोजन और उस पर होने वाले खर्च पर सवाल उठाने वाले लोग स्वाधीनता दिवस और गणतंत्रता दिवस मनाने पर भी ऐतराज करेंगे तथा उन आयोजनों पर होने वाले खर्च का भी औचित्य मांगेंगे ? क्या व्यक्तिगत जीवन में जन्मदिन और शादी की सालगिरह मनाने वाले लोग पारिवारिक-सामाजिक जीवन में दिवाली, होली, ओणम, पोंगल,

लोहिड़ी आदि मनाने पर भी ऐतराज करेंगे? क्या उन्हें यह महसूस नहीं होता कि वैसे आयोजनों पर होने वाला खर्च व्यय नहीं , निवेश होता है क्यों कि उन आयोजनों से जो सकारात्मक और सौहार्दपूर्ण वातारण बनता है ,वह टीम भावना और कार्यक्षमता बढाने में सहायक होता है।

सवाल तो यह भी उठाया जाता है कि जब देश के समग्र विकास के लिए पंच वर्षीय योजना लागू की गई तो हिन्दी को लागू करने के लिए 15 वर्षीय योजना क्यों बनाई गई ? तुर्की में जिस तरह मुस्तफा कमाल पाशा ने एक झटके में तुर्की को राजभाषा बना दिया था , उसी तरह भारत में भी आज़ादी मिलने के बाद क्यों नहीं किया गया? वे तो यह भी सवाल उठाते हैं कि तुर्की और जापान जैसे छोटे देशों को छोड़ दें, तब भी चीन तो भारत से बड़ा और अधिक जनसंख्या वाला देश है, वहां जिस तरह चीनी भाषा को लागू किया गया, उसी तरह भारत में हिन्दी को क्यों नहीं लागू किया गया?

वस्तुत: ऐसे सवाल उठाने वाले लोग भारत की विविधता को नज़र-अंदाज कर जाते हैं, वे इस तथ्य से भी किनारा कर लेते हैं कि विशाल भारत-भूभाग, जो कश्मीर से कन्याकुमारी तक और कच्छ से बंगाल की खाड़ी तक फैला हुआ है और जहां अनगिनत भाषाएं, धर्म, सम्प्रदाय, जातियां, संस्कृतियां और भिन्न-भिन्न प्रकार के रहन-सहन, खान-पान, वेश-भूषा हैं, विविधता में एकता का प्रतीक है।

वैसे लोग यह भी नहीं देख पाते कि कमाल पाशा तानाशाह थे और चीन गणतंत्र तो है, किन्तु लोकतंत्र नहीं है, वहां तो एक पार्टी की तानाशाही है, जबकि भारत ने गणतंत्र के साथ-साथ प्रजातंत्र के मूल्यों पर आधारित शासन-व्यवस्था अपनाई है।

इतिहास सक्षी है कि विविधता में एकता भारत का मूलभूत स्वरूप रहा है, सामासिक संस्कृति भारतीय परम्परा की धरोहर रही है और हमें अपनी इस सांस्कृतिक धरोहर को हर हाल में अक्षुण्ण रखना है। हिन्दी उस सांस्कृतिक धरोहर, राष्ट्रीय एकता और सामाजिक सद्भाव की संवाहिका है क्योंकि सारी विविधताओं को एक सूत्र में पिरोये रखने में यदि किसी एक कारक ने सर्वाधिक योगदान किया है तो वह है **हिन्दी** ।

आज की और आने वाली पीढ़ियों को संविधान निर्माता स्वाधीनता सेनानी राजनेताओं के प्रति कृतज्ञ होना चाहिए कि उन्होंने इतिहास और भूगोल को एक-साथ हमारे हाथों में सौंपा, देश की विविधता को एकता के सूत्र में पिरोने का मूल मंत्र हमें दिया, प्रांतों और क्षेत्रों तथा उनके भाषायी स्वातंत्र्य एवं स्वाभिमान को पंखुड़ियों की तरह कमल-दल में समाहित कर हमें दिया और इसीलिए संविधान में हिन्दी को तो भारत संघ की राजभाषा का दर्जा दिया गया, सभी

महत्वपूर्ण प्रांतीय भाषाओं को भी संविधान की आठवीं अनुसूची में शामिल कर राष्ट्रीय (महत्व की) भाषा का मान दिया गया।

## राजभाषा : ऐतिहासिक निर्णय - ॥

तो 1947 का जून माह आते-आते यह स्पष्ट हो गया कि भारत बंट जाएगा और देश के दो हिस्से हो जाएंगे- हिन्दुस्तान और पाकिस्तान। फलस्वरूप भारत और पाकिस्तान को एक रखने की विवशता या तुष्टीकरण की आवश्यकता नहीं रह जाने के कारण हिन्दी के पक्षधरों का उत्साह बढ़ गया और हिन्दुस्तानी के पक्षधरों का पक्ष कमजोर पड़ गया। इसीलिए **संविधान सभा का 14 जुलाई, 1947 का चौथा सत्र शुरू होने से पहले सभा के कांग्रेसी सदस्यों में इस विषय पर मतदान हुआ तो हिन्दी के पक्ष में 63 और हिन्दुस्तानी के पक्ष में 32 मत पड़े। वैसे ही देवनागरी अंकों के पक्ष में 63 तथा अन्तरराष्ट्रीय अंकों के पक्ष में मात्र 18 मत पड़े।** लेकिन इस विषय पर अंतिम निर्णय को यह कहकर टाल दिया गया कि भाषा जैसे नाजुक मसले पर बाद में विचार किया जाएगा तथा इस मामले को बहुमत के बदले एकमत, यानी सर्वसम्मति से हल किया जाएगा।

दो वर्षों बाद 26 अगस्त, 1949 को सभा के कांग्रेसी सदस्यों के बीच अंकों को लेकर एक बार फिर मतदान हुआ, तो देवनागरी के पक्ष में 78 और अंतरराष्ट्रीय अंकों के पक्ष में 77 मत पड़े। भाषा की अपेक्षा अंकों का मामला ज्यादा पेचीदा साबित हुआ। संविधान सभा के कांग्रेसी सदस्यों के बीच फिर **2 सितम्बर, 1949** को इस विषय पर तीसरी बार मतदान हुआ। इस दफे दोनों ही पक्षों को बराबर-बराबर यानी 77 और 77 मत प्राप्त हुए। इसलिए इस विषय पर एक बार फिर (यानी चौथी बार) मतदान हुआ। किन्तु स्थिति वही की वही बनी रही, अर्थात 77-77 । उक्त दोनों मतदान के पहले एक सदस्य बैठक से चले गए थे । तथ्यों का सूक्ष्म अध्ययन करने से संकेत मिलता है कि पहले मतदान के समय वे संभवत: किसी कार्य ( ? ) के लिए बाहर गए और दूसरे मतदान के समय भी शायद बाहर ही रह गए । शायद मनसा यह थी कि देवनागरी अंकों के ऊपर भारतीय अंकों के अंतरराष्ट्रीय स्वरूप को स्वत: वरीयता मिल जाए क्योंकि हिन्दी को राजभाषा बनाने में योगदान देनेवाली दक्षिण की कई बडी हस्तियों ने अपना यह मत खुलेआम जाहिर किया था कि जब हिन्दी को सबने राजभाषा मान लिया है तो हिन्दी वाले देवनागरी अंकों को लेकर क्यों जिद्द कर रहे हैं, वे अंतरराष्ट्रीय अंकों को मान क्यों नहीं लेते,थोडी उदारता क्यों नहीं बरतते। वस्तुत: कॉग्रेस के बडे नेता भी वही चाहते थे क्योंकि सौहार्द और सामंजस्य के लिए वह आवश्यक भी था।

उस समय कांग्रेस के अध्यक्ष थे पट्टाभि सीतारम्मैया, जिन्होंने मतदान में भाग नहीं लिया था। हार-थककर कांग्रेस कार्यसमिति ने इस विषय पर अपने सदस्यों को छूट दे दी कि वे संविधान -

सभा में स्व-विवेक से मतदान करें। संविधान-सभा में इस विषय पर 12, 13 एवं 14 सितम्बर, 1949 को तीन दिनों तक पूरी गहमागहमी के साथ बहस हुई। 14 सितम्बर को संविधान सभा की बैठक तीन बार स्थगित हुई। एक बजे सभा की बैठक तीसरी बार स्थगित की गई, ताकि कांग्रेसी सदस्यों की एक राय बन सके। फिर 3 बजे बैठक आरंभ हुई तो पं. बालकृष्ण शर्मा ने सभा के अध्यक्ष से बहस बंद करने का प्रस्ताव प्रस्तुत किया। उसी बीच डॉ. रघुवीर ने आकर सूचित किया कि देवनागरी के मामले पर सहमति हो गई है और फिर अंत में बिना किसी बहस-मुहाबिसे या मतदान के सर्वसम्मति से **14 सितम्बर, 1949** को संविधान सभा ने हिन्दी को भारत संघ की राजभाषा के रूप में स्वीकार कर लिया तथा अंकों के मामले में भारतीय अंकों के अंतरराष्ट्रीय स्वरूप को स्वीकार किया गया। ( हालंकि सहमति देवनागरी अंकों को अपनाने पर हुई थी किंतु डॉ. रघुवीर की संविधान सभा के सदस्यों के बीच विश्वसनीयता थी और शायद इसीलिए उन्होंने मामले के स्थायी समाधान के लिए महाभारत के युद्धिष्ठिर की तरह **"अश्वत्थामा हतो नरो वा कुंजरो "** के उद्घोष जैसी स्थिति पैदा की और अंतरराष्ट्रीय अंकों को स्वीकार करा लिया। जो भी हो, राष्ट्रहित में वह समझदारीभरा कदम था। )

इन तथ्यों से यह स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दी का विरोध करने वाले अंग्रेजी या किसी अन्य भाषा को उसके स्थान पर नहीं लाना चाहते थे, बल्कि हिन्दी के ही एक दूसरे रूप हिन्दुस्तानी को लाना चाहते थे। लेकिन उसमें भी सफलता नहीं मिली और जुलाई, 1947 के मतदान में हिन्दी के पक्ष में दो-तिहाई बहुमत मिला। उसके बाद **26 अगस्त, 1949** को एक बार तथा **2 सितम्बर, 1949** को दो बार जो मतदान हुए थे, वे देवनागरी और अंतरराष्ट्रीय अंकों में से किसी एक को अपनाने को लेकर हुए थे, न कि हिन्दी और हिन्दुस्तानी को लेकर, क्योंकि हिन्दी का मामला तो जुलाई, 1947 में ही सुलझा लिया गया था। और, वह भी **उक्त सभी मतदान संविधान सभा में न होकर सभा के कांग्रेसी सदस्यों के बीच, कांग्रेस की बैठक में हुए थे, ताकि कांग्रेस संविधान सभा में अपना सर्वसम्मत विकल्प प्रस्तुत कर सके, क्योंकि संविधान सभा में कांग्रेस के सदस्यों की संख्या अधिक थी और किसी भी विषय पर कांग्रेस का सर्वसम्मत निर्णय सर्वाधिक प्रभावी होता था। संविधान सभा ने तो उक्त विषय पर सर्वसम्मत प्रस्ताव पारित किया था।** अत: **हिन्दी के एक मत से भारत संघ की राजभाषा बनने की बात भ्रामक है। एक मत से जीतनेवाला मामला देवनागरी अंकों का था, जिसे सदस्यों ने आम राय से रद्द कर भारतीय अंकों के अंतरराष्ट्रीय स्वरूप को अपनाया।**

इस प्रकार संविधान सभा ने हिन्दी को एक मत से नहीं, बल्कि एकमत से यानी सर्वसम्मति से भारत संघ की राजभाषा के रूप में स्वीकार किया था।उसके बाद व्यवहार और प्रयोग के स्तर पर

राजभाषा नीति लागू करने में कई नए सवाल भी पैदा हो गए।

## हिन्दी बनाम राजभाषा हिन्दी

हिन्दी भारत के जनमानस की भाषा है, राष्ट्रभाषा है, संपर्क भाषा है और साथ ही शासकीय प्रयोजनों के लिए भारत संघ की राजभाषा भी है। अपने प्रथम तीन रूपों में हिन्दी 'पल-पल परिवर्तित प्रकृति-वेश' की भांति बदलते रहने के लिए स्वतंत्र है। उसका प्रयोग करने वाले अपनी आवश्यकतानुसार, देश-काल-पात्र के अनुसार, उसका प्रयोग करने को स्वतंत्र हैं। उनपर कोई बंधन नहीं, कोई सीमा नहीं। तभी तो बिहार की भोजपुरी, मैथिली, मगही और बज्जिका आदि के लेप से लिपी-पुती भाषा भी हिन्दी है तो उत्तर प्रदेश में ब्रज की माधुरी, अवध की ठेठ और हरियाणा की कड़कदार भाषा भी हिन्दी ही है। पंजाब की 'मैंने जाना है' दिल्ली की 'आप चलोगे' तथा राजस्थान की 'ण' की सांसत में फंसी भाषा भी हिन्दी ही है। वैसे ही उड़ीसा, असम और बंगाल की अपनी हिन्दी है तो आंध्र प्रदेश, केरल, कर्नाटक और तमिलनाडु की अपनी हिन्दी और बम्बईया हिन्दी तो एक अनूठी हिन्दी है ही। इतनी व्यापक और स्वतंत्र इयत्ता वाली सर्वग्राही हिन्दी के प्रयोग एवं प्रयोक्ता सीमातीत हैं। न व्याकरण का कोई बंधन, न शैली की कोई रोक-टोक, न शब्दों के लिए अटकना, न उच्चारण के लिए भटकना। सब कुछ निर्बन्ध, निर्द्वन्द्व समरसता के साथ चलता रहा है, चल रहा है और चलता रहेगा। उसमें एकरूपता की मांग की न आवश्यकता रही है और न ही उसका औचित्य।

हिन्दी का एक रूप भारत संघ की राजभाषा का भी है जिसकी अपनी सीमाएं हैं, अपना देश और परिवेश है। देश-काल-पात्र, चाहे जो भी रहे, हिन्दी के इस रूप में एकरूपता की आवश्यकता महसूस की जाती रहेगी। इसके प्रथम तीन रूपों में स्वाभाविक रूप से व्याप्त निर्बन्धता इस चौथे रूप में ज्यों की त्यों नहीं अपनाई जा सकती, क्योंकि एक ही संस्था या एक ही कार्यालय में इन तमाम रूपों को अपनाने से भाषा की अराजक स्थिति उत्पन्न हो जाएगी, जो उसकी अस्वाभाविक मौत की जिम्मेवार होगी। इसीलिए यह शतरूपा हिन्दी अपने अलग-अलग रूपों में तो भारत संघ की राजभाषा नहीं है किन्तु वह राजभाषा हिन्दी, शतरूपा हिन्दी की प्रतिनिधि अवश्य है। राजभाषा हिन्दी की परिमितता को व्यापकता प्रदान करने के लिए, उसके प्रथम तीनों रूपों का अनुकूल प्रतिनिधित्व करने के लिए, हमारी सामासिक संस्कृति की अभिव्यकित के

लिए हिन्दी के अपेक्षित साज-श्रृंगार की आवश्यकता भारत की संविधान सभा ने भी महसूस की थी और स्वतंत्र भारत की लोकप्रिय सरकार ने भी। इसीलिए संविधान के अनुच्छेद 343 में जहां

यह कहा गया कि भारत संघ की राजभाषा हिन्दी होगी तथा लिपि देवनागरी, वहीं अनुच्छेद 351 में यह भी कहा गया कि केन्द्र सरकार हिन्दी का विकास इस रूप में करेगी कि वह भारत की सामासिक संस्कृति की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम बन सके। इन्हीं उद्देश्यों को ध्यान में रखकर विभिन्न आयोगों, समितियों आदि का भी गठन हुआ।

राजभाषा से संबंधित आयोग और समितियों का काम सांविधानिक प्रावधानों के तहत सरकारी नीति-रीति तय करना था तो शब्दावली-आयोग आदि का काम राष्ट्र की सामासिक संस्कृति को अभिव्यक्त कर सकने लायक हिन्दी को एक व्यापक स्वरूप के साथ-साथ एकरूपता प्रदान करना था, उसके लिए आवश्यक एवं ग्राह्य शब्दावली तैयार करना था। **हिन्दी बनाम राजभाषा के अघोषित शीतयुद्ध का श्रीगणेश यहीं से होता है** क्योंकि ऐसे आयोगों/समितियों में भिन्न-भिन्न प्रदेशों के विद्वान, भाषाविद्, साहित्यकार आदि शामिल किए गए थे। आवश्यकता थी उनमें परस्पर सहयोग एवं सामंजस्य की, व्यावहारिक एवं उपयोगी नजरिया अपनाने की, राष्ट्र की जनता की अपेक्षाओं के अनुकूल हिन्दी का एक सर्वग्राही रूप तैयार करने की। लेकिन इन सबके बीच शायद उन सबका अहम आ गया , व्यक्तित्व एवं कृतित्व की टकराहट में शायद हिन्दी पिस गई , और जैसा कि कुछ लोग मानते हैं , ऐसे-ऐसे शब्दों का निर्माण हुआ, जिनके प्रयोग से हिन्दी भाषा का सहज-स्वाभाविक स्वरूप तिरोहित हो जाने की आशंका बढ़ गई।

राजभाषा से संबंधित आयोग और समितियां अपना काम करती रहीं। उनके सुझावों और सिफारिशों के फलस्वरूप राजभाषा अधिनियम एवं नियम बने, विभिन्न कार्यक्रम बनें जिन्हें कार्यान्वित करने के लिए विभिन्न स्तर के अधिकारी, अनुवादक आदि नियुक्त हुए, यानी कि एक पूरी मशीनरी तैयार हो गई1 उन्हें साधन-सम्पन्न बनाया गया। उन साधनों के रूप में उन्हें वे ही शब्दावलियां सौंपी गई जो संबंधित विषयों के तत्कालीन श्रेष्ठ विद्वानों की मंडलियों ने तैयार कराई थीं। अब कार्यान्वयन-मशीनरी के लिए आवश्यक हो गया कि वे देशव्यापी संस्थाओं के कार्यालयों में प्रयोग में लाई जाने वाली राजभाषा के स्वरूप में एकरूपता लाने के लिए उन्हीं शब्दावलियों का प्रयोग करें। इस प्रकार एक ऐसी हिन्दी उपजी जिसे **'सरकारी हिन्दी'** कहा जाने लगा।

## सरल हिन्दी का प्रयोग हो

सुझाव अच्छा और उपयोगी है।लेकिन साथ ही, एक विचारणीय तथ्य यह भी है कि उत्तर - पश्चिम भारत में उर्दूनिष्ठ हिन्दी और दक्षिण-पूर्व भारत में संस्कृतनिष्ठ हिन्दी तो मध्य

भारत में खडी बोली हिन्दी सरल हिन्दी मानी जाती है। हिन्दी अधिकारी या अनुवादक भारत सरकार की ऐसी संस्थाओं में नियुक्त होते हैं, जिनकी शाखाएं/कार्यालय देश के भिन्न-भिन्न प्रदेशों में स्थित होते हैं, जिनमें काम करने वाले लोग भी भिन्न प्रदेशों के होते हैं, जिनकी हिन्दी की जानकारी भी भिन्न स्तर की होती है और सबके काम की प्रकृति भी भिन्न-भिन्न होती है, परन्तु उन सबके लिए समान आदेश-अनुदेश जारी होते हैं। अत: उन सबमें प्रयुक्त होने वाली हिन्दी में एकरूपता का होना अपेक्षित ही नहीं, अनिवार्य भी है और इसके लिए एकमात्र उपाय है, आयोगों द्वारा निर्मित एवं सरकार द्वारा स्वीकृत शब्दावलियों को ही काम में लाना , वरना दफ्तरों में भाषिक अराजकता फैल जाएगी ।

इसके अलावा किसी सरकारी कार्यालय का अनुवादक किसी साहित्यिक कृति के अनुवादक की भांति शब्दों के प्रयोग में स्वतंत्र नहीं होता है। खासकर तकनीकी साहित्य के अनुवाद के मामलों में शब्द विशेष के लिए स्वीकृत प्रतिशब्द का प्रयोग ही बाध्यकारी होता है। ऐसा नहीं होने पर विधिक कागजातों के अनुवाद में तो अनर्थकारी परिणाम हो सकते हैं, तो फिर शब्दों के लिए दोष उन अनुवादकों को क्यों दिया जाए? हां, तकनीकी दस्तावेजों को छोड़कर सामान्य कागजातों के अनुवाद में स्वाभाविकता यदि नहीं आती है तो संबंधित अनुवादक और उसके हिन्दी अधिकारी दोषी हैं, लेकिन यहां तो एक चलन-सा हो गया है **'हिन्दी अधिकारियों की हिन्दी'** या **'सरकारी हिन्दी' कह कर व्यंग्य-वाण छोड़ने का।**

ऐसे व्यंग्यवाण यदि सामान्य जनता की ओर से छोडे जाएं, छात्रों की ओर से छोडे जाएं तो बात समझ में भी आती है, उनका औचित्य भी नजर आता है, क्योंकि वे राजभाषा हिन्दी की संवैधानिक प्रक्रियाओं, तकनीकी उलझनों से अनभिज्ञ होते हैं। किन्तु ऐसे ही व्यंग्यवाण यदि महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों के प्राध्यापकों, कुलपतियों, लेखकों, सम्पादकों आदि द्वारा भी छोडे जाएं तो उनके संबंध में भी यही माना जा सकता है कि राजभाषा हिन्दी की संवैधानिक स्थितियों और तकनीकी प्रक्रियाओं से वे भी अनजान ही हैं।

# हिन्दी बनाम विशुद्ध हिन्दी

प्राय: ऐसे आरोप लगाए जाते हैं कि **हिन्दी के साथ विश्वासघात** और राजनीतिक षड्यंत्र हो रहा है। इस विषय में मैं सिर्फ इतना निवेदन करना चाहूंगा कि हिन्दी भाषा एवं साहित्य के इतिहास का अध्ययन-अध्यापन करने वाले हिन्दी के समस्त विश्वविद्यालयीन प्राध्यापकों और लेखकों, सम्पादकों को राजभाषा हिन्दी के इतिहास का भी अध्ययन अवश्य कर लेना चाहिए

ताकि उन्हें यह तो मालूम हो कि आजादी के बाद संविधान सभा द्वारा भारत संघ की राजभाषा के रूप में स्वीकार किए जाने से लेकर अब तक हिन्दी अपने अस्तित्व की तलाश में कहां-कहां भटकी है, इस बहुभाषी और बहुसंस्कृतिवेशी देश को अपनी राजभाषा लागू करने में दुनिया के सबसे बड़े लोकतांत्रिक देश होने के अपने स्वरूप को बनाए रखने के लिए कहां-कहां, क्यों और कैसे-कैसे समझौते करने पड़े हैं।

दरअसल उन्हें यह पता ही नहीं कि हिन्दी अधिकारियों का कार्यालीन संबंध हिन्दी साहित्य से नहीं, हिन्दी भाषा से है। उन्हें यह मालूम ही नहीं कि हिन्दी साहित्य से बिल्कुल अछूता रहने वाला व्यक्ति भी सरकारी कार्यालयों में हिन्दी से अंग्रेजी और अंग्रेजी से हिन्दी में ऐसा ठोस और उत्कृष्ट अनुवाद कर सकता है जो अधिकांश साहित्यकार अध्यापकों के बूते से बाहर होगा। उन्हें यह भी नहीं मालूम कि देश के गिने-चुने श्रेष्ठ हिन्दी अधिकारियों में से कई ऐसे व्यक्तित्व भी हैं जिन्हें यह भी नहीं मालूम कि **श्रीलाल शुक्ल लिखित 'राग दरबारी'** कोई साहित्यिक कृति है या संगीत के क्षेत्र में राग दरबारी पर लिखी गई कोई पुस्तक, फिर भी हिन्दी और अंग्रेजी, दोनों ही भाषाओं पर समान रूप से उनका अधिकार है तथा इनका प्रयोग वे इस कुशलता से करते हैं, जिसे देखकर दोनों ही भाषाओं के अध्यापक दांतों तले उंगली दबा लें।

अत: हिन्दी में लालित-पालित हिन्दी के लिए लालायित हिन्द के लालों को हिन्दी पढ़ाने वाले उन विश्वविद्यालयीन हिन्दीजीवियों से प्रार्थना है कि 'हिन्दी अधिकारियों की हिन्दी' अथवा 'सरकारी हिन्दी' का फतवा देने से पहले वे उस उल्लासजनित हिन्दीमय वातावरण से कुछ क्षण बाहर निकलकर किसी सरकारी कार्यालय में हिन्दी का प्रयोग कराने वाले किसी हिन्दी अधिकारी के कार्यों का और उस माहौल का प्रत्यक्षीकरण करें और तब हिन्दी की सुघड़-सलोनी सूरत की सौन्दर्य-वृद्धि के लिए साहित्यिकता का सुरमा, तत्सम शब्दों की मेंहदी, आलंकारिक प्रयोगों के आभूषण और शुद्धतावादी प्रसाधन सामग्रियों के लेप लगाने के अपने दृष्टिकोण के औचित्य पर विचार करें। शुद्ध हिन्दी का वितंडावाद खड़ा करने वाले लोग यह बतलाने की कृपा करें कि उनके निजी प्रयासों ने कितने हिन्दीतर-भाषियों को हिन्दी की ओर आकृष्ट

किया है, कितने हिन्दीतर-भाषियों को उन्होंने हिन्दी सिखाई है। यदि एक भी नहीं, तो उनके हिन्दी पांडित्य से हिन्दी को क्या मिला? दूसरी तरफ एक अदना-सा हिन्दी अधिकारी है जो अपने सेवा-काल में सैकड़ों की संख्या में हिन्दीतर-भाषियों को हिन्दी सिखाकर हिन्दी में काम करने के लिए तैयार करा चुका होता है।

**विशुद्ध हिन्दी** के पक्षधर ये विद्वान ही अन्य भारतीय भाषाओं या विदेशी भाषाओं के लोकप्रचलित शब्दों को भी हिन्दी में अपनाने से परहेज रखते हैं जबकि हिन्दी का शब्द भंडार ही तत्सम, तद्भव, देशज और विदेशज शब्दों के योग-संयोग से बना है। ऐसे ही लोग स्टेशन, बैंक, चेक, रेल, ट्रेन, इंजन आदि की भी हिन्दी बनाने का आग्रह रखते हैं और वैसे अंग्रेजी शब्दों का हिन्दी वाक्यों में देवनागरी लिपि में ज्यों का त्यों प्रयोग करने वाले हिन्दी अधिकारियों की आलोचना करते हैं और **'हिन्दी के दुश्मन हिन्दी अधिकारी'** का फतवा जारी करते हैं। आखिर हमारी हिन्दी इतनी संकुचित क्यों हो कि वह किसी अन्य भाषा के शब्द को पचा न सके। दरअसल ऐसी हिन्दी की यदि हिन्दी के कोई महारथी **'हिन्दी अधिकारियों की हिन्दी'** कहकर खिल्ली उड़ाते हैं तो उड़ाएं, हम आश्वस्त हैं कि यही हिन्दी, हिन्दी को जिन्दा रख पाएगी क्योंकि हिन्दी मुट्ठी भर महापंडितों की नहीं, इस विशाल देश के विशाल जनमानस की भाषा है और हमें याद रखना होगा कि ऐसे ही शुद्धतावादी दृष्टिकोण रखने वाले महापंडितों ने विश्व की प्राचीनतम और समृद्धतम भाषाओं में परिगणित संस्कृत भाषा पर प्राणघातक हमला किया था जिसकी मर्मांतक पीड़ा आज भी वह झेल रही है। उस मूर्छित संस्कृत को ममीकृत शव का स्वरूप देकर अजायबघरों में इतिहास की वस्तु भर बना देने की साजिश भी रची गई। जब कभी भी उस ममीकृत शव में स्पन्दन होता है, उसकी बंद आंखों से आंसू नहीं, खून टपकता है और उसका चेहरा लहूलुहान हो जाता है। आखिर कौन हैं वे लोग जो ब्रहमांड वरेण्या संस्कृत माता की इस दुर्दशा के लिए जिम्मेदार हैं? **इतिहास अपने-आपको दोहराता हो तो दुहराए, हम संस्कृत का अतीत हिन्दी का वर्तमान और भविष्य नहीं बनने देंगे।**

**'हिन्दी बनाम शुद्ध हिन्दी'** का अघोषित शीत युद्ध छेड़ने वाले अध्यापकों, आलोचकों, लेखकों, साहित्यकारों और सम्पादकों से विनम्र आग्रह है कि वे कुछ ऐसे शब्दकोश तैयार करें जिनमें हिन्दी के तमाम रूपों का प्रतिनिधित्व करने वाले सहज- स्वाभाविक एवं लोक-प्रचलित मानक शब्द हों तथा वे कुछ ऐसी रचना करें जिससे हिन्दीतर- भाषी व्यक्तियों में भी हिन्दी सीखने-पढ़ने, लिखने-बोलने की स्वाभाविक ललक पैदा हो सके और जो हिन्दी के पाठकों की अभिरूचि को भी परिष्कृत कर सके। साहित्यिक हिन्दी का दंभ भरने वाले ये रचनाकार हिन्दी के लिए भूखे हिन्दी-जनमानस के इस सवाल का जवाब दें कि वह क्यों और कब तक सत्यकथाओं और अपराध कथाओं को पढ़कर अपनी पाठकीय भूख मिटाता रहे? कब तक

घिसी-पिटी और उबाऊ खबरों तथा टीवी चैनलों की टीआरपी बढ़ाऊ दिमाग की नस तोड़ू प्रोग्रामों से अपनी बौद्धिक वुभुक्षा को शांत करता रहे, क्यों फंतासी उपन्यास अपने पहले संस्करण में ही लाखों की संख्या में छपते हैं और बिक जाते हैं? यह दलील हम बहुत सुन

चुके हैं कि हर क्षेत्र में अच्छी चीजों के खरीददार बहुत कम होते हैं। इस दलील से उनकी रचनाधर्मिता पाक-साफ नहीं करार दी जा सकती।

यदि वे साहित्यकार हैं तो क्या उनका कर्तव्य  नहीं कि वे ऐसी रचना दें जो अच्छी भी हों, रूचिकर भी हों, सरल और सस्ती भी हों? क्यों उनकी रचनाधर्मिता इतनी अशक्त हो गई है कि वे पाठकों की अभिरूचि को परिष्कृत कर सकने लायक कुछ भी लिख पाने में अपने को सक्षम नहीं पा रहे हैं ?  क्या उन्हें यह नहीं मालूम की पिछली सदी में हिन्दी में कुछ ऐसी रचनाएं भी आईं जिन्हें पढ़ने के लिए हिन्दीतर भाषियों ने हिन्दी सीखी, तो वैसा लेखन अब क्यों नहीं हो सकता ? क्या उन्हें नहीं मालूम की प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक अध्यात्म, दर्शन-राजनीति या समाज में जो भी क्रांतिकारी परिवर्तन हुए हैं, उनके मूल में साहित्य और साहित्यकार ही रहे हैं और वे साहित्यकार किसी राज्याश्रय में नहीं पले-बढ़े या राजकोष से सहायता लेकर उन्होंने लेखनी  या कागज नहीं खरीदा और उन्होंने राजा से यह गुहार नहीं लगाई कि हमें अर्थ दो ताकि तुम्हारे अनर्थ के लिए तुम्हारी जनता को हम नए शब्द और नए अर्थ दे सकें ।

यदि किसी को लगता है कि **हिन्दी के साथ षडयंत्र** हो रहा है तो सबसे पहले यह बताइए कि उसमें किस हद तक आप शामिल नहीं है। यदि यह मानते हैं कि सरकारी हिन्दी में अपच पैदा करने वाले शब्द भर दिए गए हैं, तो पहले यह तो बताइए कि विषयगत शब्दों का कौन-कौन-सा कोश आप तैयार कर रहे हैं या करा रहे हैं।  क्या गारंटी है कि शब्दावली निर्माताओं में यदि आप भी होते तो अपने कुछ पसंदीदा शब्दों को रख-रखवाकर संतुष्ट नहीं हो गए होते? सरकार ने तो सिर्फ यह कहा था कि सरल हिन्दी का प्रयोग हो। अब सरल हिन्दी की क्या परिभाषा हो, वह तो शब्दावली आयोग में सदस्य मनोनीत किए गए हिन्दी के उन विद्वानों को ही तय करना था, तो फिर इसके लिए सरकार या हिन्दी अधिकारियों को क्यों कोसते हैं आप? इसके अतिरिक्त यह भी विचारें कि कोई भी भाषा सरल या मुश्किल नहीं होती, कोई भी शब्द सहज या कठिन नहीं होता, बल्कि परिचित या अपरिचित होते हैं। साथ ही, अपने गिरेवान में झांक कर भी देखें कि जिस अंग्रेजी को हजारों-लाखों खर्च करके वर्षों पढ़ते रहे, उसे तो आप शुद्ध लिख-बोल नहीं सकते और हिन्दी सीखने में परिणाम तत्काल

चाहते हैं। कुछ इसके शब्द यदि गूढ़ लगते हैं तो उन्हें सीखने में कुछ अभ्यास क्यों नहीं करते? उनसे परिचय क्यों नही बढाते । अंग्रेजी तो चोटी को खंभे में बांधकर पढ़ते रहे, परन्तु हिन्दी सीखने में अलादीन के चिराग की अपेक्षा रखते हैं।

## हिन्दी किसी पर थोपी नहीं जाएगी

राजभाषा के संबंध में संविधानिक प्रावधानों और उनके तहत पारित राजभाषा अधिनियम और नियमों का अध्ययन - मनन करने वाला कोई भी व्यक्ति ऐसी शब्दावली का प्रयोग नहीं कर सकता है क्योंकि राजभाषा नीति पूरी तरह प्रेरणा और प्रोत्साहन पर आधारित है तथा राज्यों की राजभाषा चुनने का अधिकार संबंधित राज्यों के विधान मंडलों में निहित है और संघ की राजभाषा का कार्यान्वयन कार्यक्रम केन्द्रीय कर्मियों के हिन्दी ज्ञान के स्तर पर आधारित है।यदि किसी केन्द्रीय कर्मी को हिन्दी का अपेक्षित ज्ञान नहीं है तो उसके लिए आवश्यक प्रशिक्षण का प्रावधान सरकारी खर्च पर कार्यालय अवधि के दौरान है। ऐसी स्पष्ट नीति के होते हुए किसी पर भी "हिन्दी थोपने" जैसे अनर्गल शब्द का प्रयोग ही निरर्थक, भ्रामक और अज्ञान तथा उकसाऊ - भडकाऊ प्रवृति का परिचायक है।

इतिहास गवाह है कि हिन्दी के विकास में हिन्दीतरभाषियों का योगदान हिन्दी भाषियों से किसी भी रूप में कम नहीं रहा है और किसी भी भाषा के विद्वानों और साहित्यकारों से कमतर विद्वान हिन्दी में भी नहीं है। आवश्यकता है छिद्रान्वेषण की प्रवृत्ति त्यागने की, हीन भावना से मुक्त होकर रचनात्मक-प्रयोगात्मक मानसिकता विकसित करने की। तभी हिन्दी के ये विद्वान हिन्दी भाषा या राजभाषा हिन्दी के लिए कुछ कर पाएंगे और हिन्दी भी सही मायने में राजभाषा बन पाएगी। देश के अन्य भागों और भाषा-भाषियों को दोष देने के बजाय यदि हिन्दी के विद्वान, हिन्दी भाषी लोग, हिन्दीभाषी व्यवसायी, हिन्दीभाषी-प्रदेशों की सरकारें और केन्द्रीय कार्यालयों के हिन्दीभाषी अधिकारी - कर्मचारी ही हिन्दी के प्रयोग, परिष्कार और प्रचार-प्रसार में पूरी ईमानदारी से काम करें तो शेष लोग और कर्मचारी-अधिकारी भी वैसा ही करने लगेंगे; तब निश्चय ही हिन्दी मादरे हिन्द के माथे पर बिन्दी की तरह शोभेगी और तब हिन्दी बनाम राजभाषा का झगड़ा भी नहीं रह जाएगा और षडयंत्र भी यदि कोई है तो निष्फल हो जाएगा। मगर यहां तो हिन्दी की आस्तीन में ही .... ?

******

संविधान सभा में सदस्यों की संख्या (31.12.1947) को निमानुसार **299** थी:

**प्रांतों के सदस्य (229)**

| | | | |
|---|---|---|---|
| 1.मद्रास- 49 | 2. मुम्बई- 21 | 3. पश्चिम बंगाल- 19 | 4. संयुक्त प्रांत- 55 |
| 5.पूर्वी पंजाब- 12 | 6. बिहार- 36 | 7. मध्य प्रांत और बरार- 17 | 8.असम- 8 |
| 9. उड़ीसा- 9 | 10. दिल्ली-1 | 11. अजमेर-मेवाड़- 1 | 12. कोड़मू -1 |

**देशी रियासतों के सदस्य (70)**

| | | | |
|---|---|---|---|
| 1.अलवर-1 | 2.बड़ौदा- 3 | 3.भोपाल-1 | 4.बीकानेर-1 |
| 5.कोचीन-1 | 6.ग्वालियर- 4 | 7.इंदौर- 1 | 8.जयपुर- 3 |
| 9. जोधपुर- 2 | 10. कोल्हापुर- 1 | 11. कोटा-1 | 12.मयूरभंज-1 |
| 13.मैसूर-7 | 14.पटियाला- 2 | 15.रीवां-2 | 16.त्रावणकोर-6 |
| 17.उदयपुर-2 | 18.सिक्किम-1 | 19.त्रिपुरा, मणिपुर एवं खासी राज्य समूह -1 | 20.संयुक्त प्रांत राज्य समूह-1 |
| 21.पूर्वी राजपुताना राज्य समूह-3 | 22. मध्य भारत राज्य समूह (बुंदेलखंड और मालवा को मिलाकर)-3 | 23.पश्चिमी भारत राज्य समूह-4 | 24.गुजरात राज्य समूह-2 |
| 25. दक्षिण और मद्रास राज्य समूह- 2 | 26.पंजाब राज्य समूह-3 | 27.पूर्वी राज्य समूह- I-4 | 28.पूर्वी राज्य समूह- II - 3 |
| 29. अवशिष्ट राज्य समूह-4 | | | |

## इस आलेख में दिए गए तथ्यों के लिए प्रमुख संदर्भ - ग्रंथ


1. आत्मनिरीक्षण (भाग -3) : सेठ गोविन्ददास
2. इंडिया डिवाइडेड (खंडित भारत ) : डॉ. राजेन्द्र प्रासाद
3. इंडियाज लैंग्वेज क्राइसिस : एस. मोहनकुमारमंगलम
4. द फ्रेमिंग ऑफ इंडियाज कन्स्टीट्यूशन : शिवाराव
5. कॉस्टिचुएंट ऐसेम्बली डिबेट्स : वाल्यूम VII VIII IX
6. भारत सरकार राजभाषा आयोग का प्रतिवेदन, 1956
7. हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास : डॉ. राजबली पाण्डेय
8. व्हाट इज़ हिन्दी : डॉ. ए.के.हमीद

9. हिन्दी: अस्तित्व की तलाश : सुधाकर द्विवेदी
10. संस्कृति के चार अध्याय : रामधारी सिंह दिनकर
11. लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इंडिया : जॉर्ज ग्रियर्सन